भारत में संवैधानिक लोकतंत्र की संकल्पना का विकास : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन

डॉ. अकीला आज़ाद

सह आचार्य, राजनीति विज्ञान
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

सारांश

राज्य के इतिहास में विभिन्न प्रकार की शासन व्यवस्थाएँ विद्यमान रही हैं जिनमें राजतंत्र, अधिनायकतंत्र, कुलीनतंत्र एवं लोकतंत्र प्रमुख है। ये परिस्थितियों और काल विशेष की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तित होती रही है। इनमें लोकतंत्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासन व्यवस्था है। वर्तमान लोकतंत्र के वटवृक्ष की जड़ें अतीत की गहराइयों में छिपी हुई है। सभ्य नागरिक समाज में लोकतंत्र का प्रयोग व इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव जाति का इतिहास। नागरिक समाज में प्रजातांत्रिक संस्थाओं का अस्तित्व आरम्भ से ही किसी न किसी रूप में अवश्य रहा है। भारत में भी प्रतिनिधि संस्थाओं के अस्तित्व का उल्लेख ऋग्वेदकाल में भी मिलता है। जैसे-जैसे मानव सभ्यता का विकास होता रहा वैसे-वैसे उसका दृष्टिकोण भी संकीर्ण से व्यापक होता गया। नागरिक समाज की स्थापना की आकांक्षा ने जनसाधारण को प्रशासनिक कार्यों में भागीदारी का अवसर उपलब्ध करवाया जिसमें सामूहिक निर्णय लिये जाते हैं और निर्णय क्रियान्वयन में भी सामूहिक भागीदारी रहती है। भारत में संवैधानिक लोकतंत्र की अवधारणा का विकास विभिन्न चरणों में भिन्न-भिन्न परिस्थितियों तथा रूपों में हुआ है।

मुख्य शब्द - संविधान, लोकतंत्र, नागरिक समाज, संसदीय लोकतंत्र, स्वशासन, साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व।

प्रस्तावना

लोकतंत्र वह सरकार या शासन प्रणाली है जिसमें जनता को राजसत्ता का अंतिम स्त्रोत माना जाता है। जनता स्वयं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन में सहभागी होती है। लोकतंत्र प्रायः बहुमत का शासन होता है एवं यह बहुमत सार्वजनिक हितों से संचालित होता है। किसी भी देश के संविधान के पीछे उसका एक संवैधानिक इतिहास होता है। भारत का संविधान भी व्यापक अनुसंधान एवं विचार-विमर्श का परिणाम है। अतः संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है। औपनिवेशिक काल में भारतीयों के द्वारा अनुभव किये गये कटु अनुभवों ने उनमें राजनीतिक चेतना विकसित की जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार द्वारा अपने औपनिवेशिक काल में भारत में शासन व्यवस्था तथा प्रशासन के संचालन हेतु विभिन्न विधेयक पारित किये, इन विधेयकों के माध्यम से ही भारत में समय-समय पर लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्थापना की गई।

अध्ययन के उद्देश्य

विषय के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य भारत में संवैधानिक विकास की लोकतांत्रिक संकल्पना का किस प्रकार विकास हुआ, इसको समझना है। भारत अंग्रेजी शासन से पूर्व एक ही समय में अनेक प्रकार की शासन प्रणालियों से संचालित रहा है। भारत जो कि विश्व का सर्वाधिक मजबूत लोकतंत्र है, वह अपने इस वर्तमान स्वरूप में किस प्रकार से आया इसका अध्ययन करना इस शोध का मुख्य उद्देश्य है।

साहित्यावलोकन

भारत के स्वतंत्रता संघर्ष एवं भारत के संवैधानिक विकास व संविधान के अध्ययन हेतु मेरे द्वारा कई पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, अखबारों के लेख आदि का अध्ययन किया गया। इनमें प्रमुख रूप से डॉ. वी.एस. भार्गव की पुस्तक भारतीय इतिहास प्राचीनकाल से 1757 ई. तक, डॉ. विश्वप्रकाश और मोहिनी गुप्ता की भारतीय राजनीति विकास और विश्लेषण, के.एल. घोषाल की डवलपमेंट ऑफ इण्डियन कान्स्टीट्यूशन, सुशीला कौशिक की भारतीय शासन ओर राजनीति, आर.सी. अग्रवाल की कान्स्टीट्यूशनल डवलपमेंट एण्ड नेशनल मूवमेंट ऑफ इण्डिया, आर.आर. सेठी और वी डी महाजन की कॉन्स्टीट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया और गुरुमुख निहाल सिंह की पुस्तक लैंडमार्क्स इन इण्डियन कान्स्टीट्यूशन एण्ड नेशनल डवलपमेंट 1600-1919 है, जिनका गहन अध्ययन कर भारत के लोकतंत्र के संवैधानिक इतिहास एवं विकास को समझने एवं शोध के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता प्राप्त हुई है।

नागरिक समाज में प्रजातांत्रिक संस्थाओं का अस्तित्व आरम्भ से ही किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है। प्राचीन भारत में गणतंत्रों के समय भी लोकतांत्रिक संस्थायें विद्यमान थी। भारत में ऋग्वैदिककाल में लोकतांत्रिक प्रतिनिधि संस्थाओं का उल्लेख मिलता है। उस काल में भी राजा को राज्यारोहण के समय जनता के समक्ष जनहित तथा लोककल्याणकारी कार्यों की सिद्धि के लिए शपथ लेनी होती थी। राजा को उसके प्रशासनिक एवं राजनैतिक कार्यों में सहायता प्रदान करने हेतु 'सभा' और 'समिति' नामक लोकतांत्रिक संस्थाऐं विद्यमान थी। राज्य में ये संस्थायें सर्वोच्च जनतांत्रिक संस्थायें मानी जाती थी। सभा के सदस्यों को सभय, सभासद, सभासिन आदि नामों से जाना जाता था। सभा का निर्माण प्रजा से ही निर्वाचित व्यक्तियों में से किया जाता था और राजकार्यों में राजा को सहायता और परामर्श देने के कार्य के साथ-साथ वह उसके निर्वाचन में भी भाग लेती थी। समिति सम्पूर्ण नगर की या प्रजा की संस्था थी, राजा का निर्वाचन समिति के सदस्यों के द्वारा किया जाता था। राजा ही समिति की सभाओं की अध्यक्षता करता था। राजा के अतिरिक्त सदस्यों में से एक उसका अध्यक्ष चुना जाता था जिसे 'ईशान' कहा जाता था। डॉ. जायसवाल ने अपने ग्रंथ 'हिन्दू राजतंत्र' में सभा व समिति से भी पूर्व की एक जनतांत्रिक संस्था का उल्लेख किया है जिसे 'विदथ' कहा जाता था। महाभारत काल में यादवों का गणराज्य अंधक एक प्रगतिशील गणराज्य था, इसी प्रकार पूर्वी बिहार के शाक्य, मनल, लिच्छिवी व विदेह गणराज्य थे जिन्हें महाजनपद कहा जाता था। इन्हीं महाजनपदों के विकास से गणराज्यों की स्थापना हुई जो कि राजनीतिक दृष्टि से संगठित व जागरुक थे। ये गणराज्य वर्तमान लोकतंत्र के निकट थे। लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य के उपरान्त इनका अस्तित्व समाप्त हो गया। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना की गई। संविधान ऐतिहासिक विकास का परिणाम होते हैं। भारतीय गणतंत्र भी विस्तृत संवैधानिक विकास का परिणाम है। भारतीय संसदीय लोकतंत्र में संसदीय संस्थाओं की स्थापना संविधान सभा के द्वारा एकदम से नहीं हुई है, अपितु इसका उद्भव तो अंग्रेजी औपनिवेशिक काल में ही हो चुका था। ब्रिटिश शासन द्वारा अपने काल में भारत में शासन व्यवस्था एवं प्रशासन संचालन हेतु ब्रिटिश संसद के माध्यम से कई विधेयक पारित किये, इनके द्वारा भारतीय लोकतांत्रिक संस्थाओं का मार्ग प्रशस्त हुआ। भारतीय संविधान के ऐतिहासिक विकास का प्रारम्भ सन् 1600 ई. में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारत में आगमन के साथ ही हो गया था।

भारतीय संसदीय लोकतंत्र के ऐतिहासिक विकास के चरणों को निम्नानुसार विभक्त किया जा सकता है-

1. प्रथम चरण - ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना (1757 ई. से 1858 ई. तक)
2. द्वितीय चरण - ब्रिटिश साम्राज्य हितों की संरक्षा हेतु अधिनियम (1858 ई. से 1947 ई. तक)

3. तृतीय चरण - भारतीय संविधान का निर्माण से (1947 ई. संविधान निर्माण तक)

1. प्रथम चरण - ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना

प्लासी के युद्ध (1757 ई.) से ब्रिटिश साम्राज्य की नींव पड़ी। 1765 ई. में मुगल बादशाह शाह आलम ने कम्पनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा का दीवान बना दिया। परिणाम स्वरूप अंग्रेजों के पास इन प्रांतों से मालगुजारी वसूलने तथा दीवानी प्रशासन का अधिकार आ गया। इनके लिए ब्रिटिश महारानी और संसद के द्वारा समय-समय पर राजलेख और अधिनियम जारी किये गये, इन राजलेखें और अधिनियमों ने भारत में लोकतांत्रिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

(i) रेग्यूलेटिंग एक्ट 1773 - भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना एवं सुनिश्चित शासन प्रणाली की शुरुआत 1773 के रेग्यूलेटिंग एक्ट से हुई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों में व्याप्त अनुशासनहीनता तथा स्वार्थपरक प्रवृत्ति के कारण कम्पनी को हुई क्षति पर रिपोर्ट देने के लिए सन् 1772 में गठित समिति के प्रतिवेदन पर 1773 ई. में ब्रिटिश संसद द्वारा रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित किया गया इसे 1774 ई. में लागू किया गया। इसके द्वारा कम्पनी के संचालक मण्डल का कार्यकाल 4 वर्ष निश्चित किया गया। बंगाल के फोर्ट विलियम प्रेसीडेंसी गवर्नर को तीनों प्रेसिडेंसियों का (बंगाल, मद्रास, बम्बई) का गवर्नर जनरल बना दिया तथा उसको सहायता देने के लिये एक समिति का निर्माण किया गया। कलकत्ता में उच्चतम न्यायालय की स्थापना की गई। इस प्रकार रेग्यूलेटिंग एक्ट के द्वारा भारत में सुव्यवस्थित शासन प्रणाली की शुरुआत हुई तथा उच्चतम न्यायालय जैसी स्वतंत्र लोकतांत्रिक संस्था की स्थापना भारतीय संसदीय लोकतंत्र के लिए अमूल्य देन रही।

(ii) एक्ट ऑफ सेटेलमेंट 1781 - 1781 ई. का एक्ट ऑफ सेटलमेंट, रेग्यूलेटिंग एक्ट की कमियों को दूर करने के लिए पारित किया गया था। इस अधिनियम द्वारा कलकत्ता सरकार को बंगाल, बिहार व उड़ीसा के लिए विधि-निर्माण का अधिकार दे दिया गया। गवर्नर जनरल को सर्वोच्च न्यायालय की अधिकारिता से मुक्त कर दिया गया।

(iii) पिट्स इण्डिया एक्ट 1784 - कम्पनी की साख को बचाने के लिये पिट्स इण्डिया एक्ट, 1784 पारित किया गया। इस अधिनियम के द्वारा कम्पनी के व्यापारिक और राजनीतिक कार्य-कलापों को पृथक कर दिया गया। व्यापारिक कार्यों का प्रबंध कम्पनी के निदेशकों तथा बोर्ड ऑफ कंट्रोल की स्थापना उस पर राजनीतिक नियंत्रण और निरीक्षण करने के लिये की गई। इसके परिणाम स्वरूप ब्रिटिश संसद का नियंत्रण बढ़ गया।

(iv) 1813 का राजलेख - ब्रिटिश संसद ने कम्पनी पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित रखने के उद्देश्य से 1813 का राजलेख जारी किया। इसके द्वारा कम्पनी का भारत में व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर ब्रिटिश नागरिकों को भारत के साथ व्यापार करने की छूट प्रदान कर दी। राजलेख द्वारा बंगाल, बम्बई और मद्रास सरकारों द्वारा निर्मित विधियों का ब्रिटिश संसद से अनुमोदन को अनिवार्य कर दिया तथा स्थानीय स्वायत्तशास्त्री संस्थाओं को करारोपण का अधिकार प्रदान कर दिया गया।

(v) 1833 का राजलेख - इसके द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी का पूर्ण रूप से शासन समाप्त कर दिया गया और देश में शासन का केन्द्रीयकरण कर दिया गया। बंगाल के गवर्नर जनरल को सम्पूर्ण भारत का गवर्नर जनरल बना दिया गया तथा गवर्नर जनरल की परिषद को राजस्व के संबंध में पूर्ण अधिकार प्रदान प्रदान किये गये एवं सम्पूर्ण देश के लिए एक ही बजट की व्यवस्था की गई।

(vi) 1853 का अभिलेख - भारतीयों द्वारा कम्पनी के प्रतिक्रियावादी शासन की समाप्ति की मांग और तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी की रिपोर्ट के आधार पर प्रशासन में सुधार करने के उद्देश्य

से 1853 का राजलेख ब्रिटिश महारानी द्वारा जारी किया गया। राजपत्र द्वारा बंगाल में पृथक गवर्नर की नियुक्ति की व्यवस्था की गई। प्रशासनिक और विधायी कार्यों का पृथ्यकरण किया गया और भारत में सर्वप्रथम एक विधान परिषद की स्थापना की गई। विधान परिषद द्वारा पारित विधेयक पर गवर्नर जनरल को वीटो का अधिकार प्रदान किया गया।

भारत के संवैधानिक विकास के प्रथम चरण में ब्रिटिश संसद द्वारा पारित विभिन्न विधेयकों तथा राजलेखों के माध्यम से भारतीय संसदीय लोकतंत्र में कई लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्थापना की गई जिसकी छाप भारतीय संविधान में स्पष्ट देखी जा सकती है। प्रथम चरण में भारत में उच्चतम न्यायालय, विधान परिषद की स्थापना, सम्पूर्ण देश के लिए एक ही गवर्नर जनरल की नियुक्ति, गवर्नर जनरल को विधेयकों पर वीटो की शक्ति, सम्पूर्ण भारत के लिये एक ही बजट की व्यवस्था तथा विभिन्न प्रांतों में शासन संचालन के लिए गवर्नरों की नियुक्ति आदि कई संवैधानिक उपबंधों की व्यवस्था की गई। इन उपबंधों तथा अधिनियमों ने हमारे संविधान निर्माताओं के लिए संविधान निर्मित करने में प्रेरक की भूमिका निभाई।

द्वितीय चरण - ब्रिटिश साम्राज्य के हितों की संरक्षा

कलकत्ता के ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन ने ब्रिटिश संसद के सम्मुख 1852 ई. में भारतीयों को प्रतिनिधित्व देने के लिए विधान परिषद की स्थापना करने का अनुरोध किया था। अतः 1853 के चार्टर एक्ट के द्वारा विधान परिषद का गठन किया गया था। पहली बार लेजिस्लेटिव कौंसिल शब्द का प्रयोग हुआ था। भारत शासन अधिनियम, 1858 के द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन को समाप्त कर शासन की जिम्मेदारी ब्रिटिश क्राउन को सौंप दी गई थी। डायरेक्टर्स बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल को समाप्त कर राज्य सचिव की नियुक्ति की गई तथा समस्त अधिकार उसे सौंप दिये गये। भारतीय परिषद् अधिनियम 1861 ने भारत में प्रतिनिधि संस्थाओं की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। इस अधिनियम द्वारा सर्वप्रथम विधि निर्माण के कार्यों में भारतीयों का सहयोग लिया गया और विधि निर्माण का कार्य प्रान्तीय विधान परिषदों को सौंपा गया। इस प्रकार अधिनियम द्वारा प्रांतीय स्वायत्तता की नींव डाली गयी। वायसराय को अध्यादेश जारी करने की शक्ति प्रदान की गई। भारत में प्रतिनिधि सरकार की नींव 1892 के भारतीय परिषद अधिनियम ने डाली जिसमें बहस करने तथा प्रश्न पूछने का अधिकार भारतीयों को दिया गया। ब्रिटिश सरकार के प्रति भारतीय असंतोष व जनाक्रोश को कम करने के लिए 1909 के मार्ले-मिंटो अधिनियम पारित किया गया। अधिनियम द्वारा केन्द्रीय और प्रांतीय विधान परिषदों की शक्तियों व अधिकारों में वृद्धि की गई और प्रथम बार भारतीयों को भारत सचिव, भारत परिषद् और वायसराय की कार्यकारिणी में स्थान दिया गया। यह अधिनियम भी भारतीय आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर सका। भारतीयों पर शोषण व अत्याचार के बढ़ने के कारण कांग्रेस के नेतृत्व में भारतीयों के द्वारा स्वशासन की मांग की जाने लगी। 1917 में नियुक्त भारत सचिव मान्टेग्यू एवं चेम्सफॉर्ड ने भारत में उत्तरदायी शासन का विकास करने के उद्देश्य से भारत की समस्याओं पर एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार की जिसे 'माण्टेग्यू-चेम्स फोर्ड सुधार' के नाम से जाना जाता है। इस रिपोर्ट के आधार पर ब्रिटिश संसद ने 1919 में भारत सरकार अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम द्वारा भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना की दृष्टि से एक भारतीय उच्चायुक्त की नियुक्ति की गई। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में तीन भारतीयों को नियुक्त कर श्रम, शिक्षा, स्वास्थ्य व उद्योग विभाग सौंपे गये। उत्तरदायी शासन की स्थापना हेतु द्वैध शासन प्रणाली लागू की गई, केन्द्रीय विधान परिषद को द्विसदनीय विधानमण्डल (राज्य परिषद और निम्न सदन) बनाया गया और पृथक निर्वाचन प्रणाली की व्यवस्था की गई। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की पद्धति लागू की गई। उत्तरदायी शासन की स्थापना की दिशा में दूसरा कदम 1935 का भारत सरकार अधिनियम था जिसमें 321 अनुच्छेद और 10 अनुसूचियाँ थी। वर्तमान संसदीय लोकतंत्र का ढांचा 1935 के अधिनियम पर आधारित है। अधिनियम द्वारा प्रांतों को प्रबन्धन में स्वायत्तता प्रदान की गई। भारत में पूर्ण रूप से संघात्मक व्यवस्था लागू कर दी गई। केन्द्र में द्वैध शासन प्रणाली को समाप्त कर दिया गया, धन विधेयक केवल विधानसभा में पेश होने, गवर्नर जनरल को दोनों सदनों

की संयुक्त बैठक आहूत करने, संघीय न्यायालय की स्थापना, मताधिकार का विस्तार, संघ तथा प्रान्तों के बीच शक्तियों का विभाजन (संघ सूची, प्रांतीय सूची, समवर्ती सूची तथा अवशिष्ट सूची) आदि कई सुधार व व्यवस्थाऐं 1935 के अधिनियम द्वारा किये गये।

द्वितीय विश्व युद्ध में भारत का सहयोग प्राप्त करने के लिये 1942 में सर स्टेफॉर्ड क्रिप्स को भारत भेजा गया। उन्होंने अपनी योजना प्रस्तुत की जिसमें कहा गया कि भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन एक औपनिवेशिक स्वराज्य बनाकर उसके लिये एक संविधान सभा गठित की जायेगी जो कि भारत के लिए नवीन संविधान का निर्माण करेगी। इस योजना में अनेक विसंगतियाँ थी, भारतीय नेताओं ने इसे अस्वीकार कर दिया क्योंकि यह भारत को कई टुकड़ों में बाँटने की योजना थी। इसके पश्चात् तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री लॉर्ड एटली ने लार्ड पैथिक लॉरेन्स, सर स्टैफॉर्ड क्रिप्स ओर ए.वी. एलेक्जेण्डर के नेतृत्व में केबिनेट मिशन भारत भेजा। केबिनेट मिशन ने भारत को सत्ता हस्तान्तरण करने तथा संविधान निर्माण हेतु एक सभा के गठन की अनुशंसा की। कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने केबिनेट मिशन की योजना को स्वीकार करते हुए 2 सितम्बर, 1946 को पं. जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में 12 सदस्यीय अस्थायी सरकार का गठन किया गया। माउन्टबेटन योजना को क्रियान्वित करते हुए ब्रिटिश संसद ने 18 जुलाई 1947 को भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम के द्वारा भारत को 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र और सम्प्रभु राष्ट्र घोषित करते हुए देश का संविधान बनाने के लिए संविधान निर्मात्री सभा का गठन किया गया।

भारतीय संवैधानिक लोकतंत्र के द्वितीय चरण में 1919 का भारत सरकार अधिनियम तथा 1935 का भारत शासन अधिनियम महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। भारतीय संविधान निर्माताओं ने संविधान के निर्माण में इनकी सहायता ली है। इस चरण में प्रांतीय स्वायत्ता के द्वारा शक्तियों का विकेन्द्रीकरण किया गया। 1935 के भारत को संघात्मक व्यवस्था, केन्द्र व प्रांतों में शक्तियों के विभाजन के साथ-साथ उत्तरदायी शासन प्रदान किया।

तृतीय चरण - भारतीय संविधान का निर्माण

भारतीय संवैधानिक लोकतंत्र के विकास का तीसरा चरण संविधान सभा व संविधान के निर्माण से प्रारम्भ होता है। जुलाई, 1946 को संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव हुआ। 296 सदस्यों में से 208 सदस्य कांग्रेस ओर 73 सदस्य मुस्लिम लीग के निर्वाचित हुए। पर्याप्त स्थान न मिलने के कारण मुस्लिम लीग ने संविधान सभा का बहिष्कार किया। संविधान सभा की प्रथम बैठक 9 दिसम्बर, 1946 को हुई। संविधान निर्माण हेतु कई समितियों का गठन किया गया जिनमें प्रमुख थी- संघसमिति, कार्य-संचालन समिति, मूल अधिकारों और अल्पसंख्यक समिति, प्रांतीय संविधान सभा समिति, प्रारूप समिति आदि। संविधान सभा के अस्थायी अध्यक्ष डॉ. सच्चिदानंद झा को चुना गया। बाद में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को संविधान सभा का स्थायी अध्यक्ष चुना गया। संवैधानिक सभा के संवैधानिक सलाहकार बी.एन. राव थे। प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अम्बेडकर थे। प्रारूप समिति द्वारा संविधान का प्रारूप अक्टूबर 1947 को प्रस्तुत किया गया। संविधान सभा में 4 नवम्बर 1948 से 14 नवम्बर 1949 तक तीन वाचन हुए। संविधान सभा में निर्णय सहमति और समायोजन के आधार पर लिये गये तथा संविधान 29 नवम्बर 1949 को पारित किया गया। 26 अक्टूबर 1949 को संविधान के नागरिकता, निर्वाचन और अंतरिम संसद तथा अस्थायी उपबन्धों को लागू किया गया। शेष संविधान 26 जनवरी 1950 को प्रवृत्त हुआ। संविधान के महत्व को स्पष्ट करते हुए डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था कि- "हमारा संविधान लोकतांत्रिक एवं वंशानुगत राज्यों का समन्वय नहीं अपितु भारतीय जनता का एक वास्तविक संघ है, जिसका निर्माण व्यक्तियों की स्वतंत्रता के आधारभूत सिद्धांतों की बुनियाद पर हुआ है।"

निष्कर्ष

भारत में लोकतंत्र एवं लोकतांत्रिक संस्थाओं का अस्तित्व किसी न किसी रूप में प्रारम्भ से ही रहा है। वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं, संकल्पनाओं का आकस्मिक अवतरण नहीं होकर, शनै-शनै विकास हुआ है। लोकतांत्रिक संकल्पनाओं का विकास भारत में ब्रिटिश काल में स्पष्ट तौर पर देखा गया जबकि ब्रिटिश संसद के द्वारा समय-समय पर अपने द्वारा पारित किये गये विभिन्न विधेयकों के माध्यम से भारतीयों को अधिकार दिये गये तथा उन्हें लोकतांत्रिक कार्यप्रणाली व संस्थाओं से परिचित कराया गया। ब्रिटेन के द्वारा अपने शासन की मजबूती एवं भारतीय असंतोष को दूर करने के लिए इन विधेयकों को पारित किया गया था, लेकिन लोकतांत्रिक प्रक्रिया व संस्थाओं में भाग लेकर भारतीय स्वराज एवं स्वतंत्रता की संकल्पनाओं से परिचित हो चुके थे। अतः भारत को आजादी मिली और अपने सपनों के अनुरूप भारत के संविधान का निर्माण किया गया। भारत में लोकतंत्र की इस अवधारणा का विकास विभिन्न चरणों में तथा भिन्न-भिन्न परिस्थितियों तथा रूपों में हुआ है।

सन्दर्भ

1. भार्गव, डॉ. बी.एस. - भारतीय इतिहास प्राचीनकाल से 1757 ई. तक, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1998
2. डॉ. प्रकाश, विश्व, मोहिनी गुप्ता - भारतीय राजनीति विकास और विश्लेषण, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2001
3. घोषाल, के.एल. - डवलपमेंट ऑफ इण्डियन कॉन्स्टीट्यूशन, नवभारत पब्लिशर्स, कलकत्ता, 1978
4. कौशिक, सुशीला - भारतीय शासन और राजनीति, हिन्दी कार्यान्वय निदेशालय, नई दिल्ली, 1977
5. अग्रवाल, आर.सी. - कान्स्टीट्यूशनल डवलपमेंट एण्ड नेशनल मूवमेंट ऑफ इण्डिया, एस. चांद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005
6. सेठी, आर.आर., वी.डी. महाजन, कॉन्स्टीट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, एस. चाँद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1956
7. सिंह, गुरुमुख निहाल - लैंडमार्क्स इन इण्डियन कॉन्स्टीट्यूशनल एण्ड नेशनल डवलपमेंट 1600-1919, आत्माराम एण्ड संस, नई दिल्ली, 1950